बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य

बनाम

टी.जोगराम

2 अगस्त, 2007

(एच. के. सेमा और लोकेशवर सिंह पांटा, जे.जे.)

सेवा कानूनः

बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी, कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976

विनियम 3 और 24-कदाचार-बैंक के अनिवार्य सेवानिवृत्ति अधिकारी को यात्रा] भोजन] आवास व्यय और ठहरने के भत्ते का दावा करने वाले बढ़े हुए और मिथ्या बिल पेश करने का दोषी पाया गया। सेवा से बैंक अधिकारी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने उक्त आदेश को पुष्ट करते हुये यह अभिनिर्धारित किया कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया गया है और अपराधी के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित हुए है।

भारत का संविधान 1950

अनुच्छेद 226 - अनुशासनात्मक कार्यवाही में पारित आदेशों का

न्यायिक पुनरावलोकन- अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को जारी रखते हुए एकल न्यायाधीश का निर्णय, अपील में उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा उलट दिया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायिक पुनरावलोकन निर्णय के विरूद्घ नहीं बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरूद्घ है। तथ्यों के आधार पर प्रक्रियात्मक अनियमितताओं/अवैधताओं का कोई आरोप नहीं है और ना ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का कोई आरोप है, उच्च न्यायालय की खंड पीठ के आदेश को कानून में अस्थिर होने के कारण अपास्त कर दिया गया और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के आधार पर एकल न्यायाधीश के आदेश को बहाल किया गया।

प्रत्यर्थी, अपीलकर्ता बैंक में एक कनिष्ठ प्रबंधन अधिकारी स्केल-I, को उसके खिलाफ आरोपों की अनुशासनात्मक जांच के बाद अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा दी गई कि प्रतिनियुक्ति पर रहते हुए उसने यात्रा व्यय, आवास और बोर्डिंग शुल्क और फ्लांटिंग शुल्क का दावा करते हुए बढ़े हुए और मिथ्या बिल प्रस्तुत किए थे।

प्रत्यर्थी के द्वारा दायर रिट याचिका को उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने एक तर्कसंगत निर्णय द्वारा खारिज कर दिया था। हालाँकि, खंड पीठ ने अंतर-न्यायालय अपील में रिट याचिका को स्वीकार कर लिया।

एक अपराधी के रूप में बैंक ने तत्काल अपील दायर की।

अपीलकर्ता के लिये यह तर्क दिया गया था कि प्रक्रियात्मक अनियमितताएँ या अवैधता या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों के उल्लंघन का कोई आरोप नहीं था, जिसके लिये उच्च न्यायालय की खंड पीठ को न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से एकल न्यायाधीश के तर्कसंगत आदेश को रद्द करने की आवश्यकता थी और खंड पीठ पूरे सबूतों की पुनः सराहना करने में गलत थी और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर अपील में नहीं बैठ सकती थी और अपीलीय प्राधिकारी की भूमिका नहीं निभा सकती थी।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुये यह अभिनिर्धारित किया है कि

1.1 कानून का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायिक पुनरावलोकन यह निर्णय के विरूद्ध नहीं है बल्कि यह निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरूद्घ है। उक्त मामले में प्रक्रियात्मक अनियमितताओं/अवैधताओं का कोई आरोप नहीं है और न ही प्राकृतिक न्याय के सिद्घांतों के उल्लंघन का आरोप है। दुर्भावनापूर्ण आरोप प्रमाणित नहीं हुआ है। यह सुस्थापित विधि है कि दुर्भावनापूर्ण आरोप, अनुमान और अनुमानों पर आधारित नहीं हो सकते है। उन्हें परिस्थितयों पर आधारित होना चाहिये। (पैरा 15), (770-बी, सी)

बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, (1995), 6 एस.सी.सी. 749 और क्षेत्रीय प्रबंधक, यूपीएसआरटीसी बनाम होती लाल [2003] 3 एस.सी.सी. 605, पर भरोसा किया।

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम विश्व मोहन, (1998) 4 एस.सी.सी. 310, परिधान निर्यात संवर्धन परिषद बनाम ए.के. चोपड़ा, [1999], 1 एस.सी.सी. 759, भारत संघ बनाम के.जी. सोनी, 2006, 6 एस.सी.सी. 794, स्टर्लिंग कंप्यूटर लिमिटेड बनाम मेसर्स एम एंड एन पब्लिकेशंस लिमिटेड, [1993], 1 एस. सी. सी. 445, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और अन्य बनाम एस.के. शर्मा, [1996], 3 एस.सी.सी. 364, दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम यू.ई.ई. इलेक्ट्रिकल्स इंग. [पी] लिमिटेड, [2004] 11 एस.सी.सी. 213 और अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक बनाम पी. सी. कक्कड़, [2003], 4 एस. सी. सी. 364, उद्घृत।

1.2. जहां तक इस आधार पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन की याचिका का संबंध है तो प्रत्यर्थी द्वारा आवश्यक दस्तावेज प्रत्यर्थी को उपलब्ध नहीं कराये गये थे। प्रत्यर्थी के उक्त कथनों से यह पता चलता है कि जिन दस्तावेजों की मांग प्राधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी से की गयी थी वे सभी दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराये गये थे जो बिल प्रत्यर्थी द्वारा स्वयं प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किये गये थे, वह किन

परिस्थितियों में पेश किये गये थे जिससे प्रत्यर्थी को नुकसान नहीं हुआ हो। [पैरा 15], [770-सी, डीजे]

1.3. प्रत्यर्थी के खिलाफ आरोप है कि उसने बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी-कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के विनियम 3(1) का उल्लंघन किया। विनियम के अनुसार प्रत्येक अधिकारी एवं कर्मचारी के लिये आवश्यक है कि वह हर समय अत्यंत सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, समर्पण और परिश्रम के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें और बैंक के हितों को सुनिश्चित करने और उनकी रक्षा करने के लिये हरसंभव कदम उठाये और ऐसा कुछ भी न करें जो एक बैंक अधिकारी के लिए अशोभनीय हो। मामले के इस दृष्टिकोण में, उच्च न्यायालय की खंड पीठ का आदेश विधि में निष्प्रभावी है और तदनुसार उसे अपास्त किया जाता है और एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को बहाल किया जाता है।

[पैरा 16 और 17] [770-ई, एफ]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार - सिविल अपील सं. 298/2005

रिट अपील संख्या 205/2002 में हैदराबाद स्थित उच्च न्यायालय, आंध्र प्रदेश के निर्णय और आदेश 03.09.2004

के साथ

सी.ए. संख्या 640/2005

अपीलार्थियों की ओर से नेहा शर्मा, नीना गुप्ता, आकांक्षा और बीना गुप्ता।

प्रत्यर्थी की ओर से ए.टी. राव और ए. सुब्बा राव।

न्यायालय का निर्णय एच.के.सेमा जे. द्वारा पारित किया गया था।

(1) बैंक ऑफ इंडिया द्वारा की गयी। यह अपील आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा रिट अपील सं. 205/2002 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.09.2004 के विरूद्घ है जिसने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया।

(2) न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री नेहा शर्मा व प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.टी.राव. को सुना गया।

(3) प्रकरण के संक्षिप्त में तथ्य इस प्रकार हैं कि & प्रत्यर्थी को वर्ष 1982 में किसी समय अपीलकर्ता बैंक में क्लर्क के रूप में नियुक्त किया गया था। उसके बाद, प्रत्यर्थी को 1993 में कनिष्ठ प्रबंधन अधिकारी स्केल प्रथम के रूप में पदोन्नत किया गया और उन्हें तमिलनाडु में तैनात किया गया। दो साल बाद प्रत्यर्थी का तबादला हैदराबाद कर दिया गया जिसके पश्चात् प्रत्यर्थी 06.01.1996 से 30.03.1998 तक की अवधि के दौरान,

सिकंदराबाद शाखा में एक अधिकारी के रूप में कार्यरत था, उस दौरान प्रत्यर्थी शेयरों को जुटाने के लिए 22.02.1997 से 25.02.1997 तक विशाखापत्तनम में प्रतिनियुक्ति पर था। उपरोक्त अवधि के दौरान प्रत्यर्थी ने यात्रा व्यय, आवास और आवास शुल्क और रूकने के भत्ते का दावा करते हुये बिल प्रस्तुत किये जिसमें यह पाया गया कि प्रत्यर्थी द्वारा दावा की गयी राशि बढ़ा चढ़ाकर पेश की गयी थी जिस पर प्रत्यर्थी को दिनांक 26.03.1999 को आरोप पत्र जारी किया गया था।

प्रत्यर्थी पर लगाये गये आरोप निम्न प्रकार है कि

"अनुच्छेद I -

"आप दिनांक 22.02.1997 से 25.02.1997 तक विशाखापत्तनम शाखा में प्रतिनियुक्ति पर थे, जिसके लिये आपने 27 फरवरी, 1997 को मनगढ़ंत यात्रा व्यय का दावा करते हुये टी.ए. बिल प्रस्तुत किया था जो सामान्य परिवहन से कहीं अधिक है। आप पर आरोप है कि आपने लॉज वृंदावन का दो दिन के लिये पॉच सौ रूपये का आवास बिल जमा किया है जबकि आपके द्वारा उक्त लॉज वृंदावन में दो दिनों के लिये लिये गये कमरे का भुगतान का किराया 104/-रूपये था। इस प्रकार आपने मिथ्या बिल प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त आपने लॉज वृंदावन

द्वारा जारी बिल 300/-रूपये का बोर्डिंग शुल्क को शामिल करते हुये बिल पेश किया था जबकि उक्त लॉज में बोर्डिंग की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है व इस प्रकार आपने 350/-रूपये के रूकने के भत्ते का भी दावा किया है जो पात्रता से अधिक है।

इस प्रकार झूठी और मनगढ़ंत यात्रा व्ययों का दावा करने, झूठे आवास शुल्क का दावा करने और अधिक रूकने के भत्ते का दावा करने के लिये आप पर आरोपित आरोप यदि साबित हो जाते है, तो आपका उक्त कृत्य बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी-कर्मचारी (आचरण) विनियम, 1976 के विनियम 24 के अनुसार कदाचार की श्रेणी में आते है। आप पर उक्त विनियमों के विनियम 3(1) का उल्लंघन करने का आरोप लगाया जाता है जो इस प्रकार है कि विनियम 3(1) प्रत्येक अधिकारी-कर्मचारी, बैंक के हितों को सुनिश्चित करने और उनकी रक्षा करने के लिये हर समय हरसंभव कदम उठायेगा और अपने कर्त्तव्यों को पूरी निष्ठा, ईमानदारी, समर्पण और परिश्रम के साथ निभायेगा और कुछ भी ऐसा नहीं करेगा जो एक बैंक अधिकारी के लिए अशोभनीय हो।

"मुख्य क्षेत्रीय प्रबंधक

त्रिवेन्द्रम

और अनुशासनात्मक प्राधिकारी"

(4) प्रत्यर्थी ने आरोपों से इंकार करते हुए आरोप पर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया। अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने मुख्य क्षेत्रीय प्रबंधक, एम.आई.सी.आर. सेंटर हैदराबाद को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जिसके द्वारा जांच तेजी से की गयी। जांच अधिकारी ने गवाहों से पूछताछ करने और दोनों पक्षों के दस्तावेजों का अवलोकन करने के बाद 13.01.2000 को प्रत्यर्थी को उसके खिलाफ लगाये गये आरोपों का दोषी मानते हुये अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया।

जाँच रिपोर्ट की एक प्रति प्रत्यर्थी को भी दी गयी और प्रत्यर्थी द्वारा पेश लिखित उत्तर की जांच करने के बाद अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी के निष्कर्षों को स्वीकार कर लिया और 14.07.2001 से प्रत्यर्थी को सेवा से अनिवार्य सेवानिवृत्ति की सजा दी। इससे व्यथित होकर, प्रत्यर्थी ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति के विवादित आदेश पर आपत्ति उठाते हुए 2001 की रिट याचिका संख्या 14786 दायर की। उक्त रिट याचिका का निस्तारण उच्च न्यायालय द्वारा 20.07.2001 को कर दिया और प्रत्यर्थी को बैंक ऑफ इंडिया कर्मचारी (अनुशासन और अपील) विनियम, 1976 के विनियम 17 के तहत अपील दायर करने के प्रत्यर्थी

को अपने वैकल्पिक वैधानिक उपाय का उपयोग करने का निर्देश दिया गया। दिनांक 30.08.2001 के आदेश द्वारा, अपीलीय प्राधिकारी ने प्रत्यर्थी की अपील को खारिज कर दिया और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश की पुष्टि की।

(5) इससे व्यथित होकर, प्रत्यर्थी ने अनिवार्य सेवानिवृत्ति के दंड पर आपत्ति उठाते हुये 2001 में एक और रिट याचिका 18372 दायर की। विद्वान एकल न्यायाधीश ने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद अनिवार्य सेवानिवृत्ति के दंड में हस्तक्षेप करने का कोई वैध कारण नहीं पाया और दिनांक 27.09.2001 के आदेश द्वारा रिट याचिका को खारिज कर दिया।

(6) न्यायालय द्वारा इस स्तर पर रिट याचिका को खारिज करते समय विद्वान एकल न्यायाधीश के कारण को लिखित किया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने द्वारा पारित आदेश में यह अभिनिर्धारित किया कि "जब तक पारित आदेश नियमों/विनियमों/वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन नहीं है तब तक जांच को आकस्मिक तरीके से अपास्त नहीं किया जा सकता। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक पुनरावलोकन केवल दुर्भावनापूर्ण, मनमानेपन और विकृति के आधार पर खुला है। रिट याचिकाकर्ता यह कहने के अलावा कि वह दलितों के हितों

की रक्षा करने वाला अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग के संस्थापक है और प्रत्यर्थी बैंक प्रबंधन उसके खिलाफ पक्षपाती है, अपीलार्थी अपने मामले को साबित करने के लिए कोई भी संबंधित सामग्री पेश करने में असफल रहा। एक बार विधि की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद प्रत्यर्थी बैंक की प्रशासनिक और अनुशासनात्मक कार्रवाई पुनरावलोकन का विषय नहीं हो सकती। उक्त प्रकरण में रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री और अपीलार्थी के खिलाफ लगाये गये और साबित किये गये आरोपों के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित किया गया है। अपीलार्थी को अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त करते हुये जनहित में आदेश पारित किया गया है। रिकॉर्ड पर उपलब्ध करायी गयी जांच रिपोर्ट के आधार पर विवादित आदेश प्रत्यर्थी बैंक की व्यक्तिपरक संतुष्टि है।

(7) अपीलार्थी, प्रत्यर्थी बैंक का एक अधिकारी है और उसे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि बैंक व्यवसाय पूर्ण समर्पण, परिश्रम, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी को बैंक कर्मचारी और विशेष रूप से बैंक अधिकारी द्वारा संरक्षित करने की आवश्यकता है। यदि इसका पालन नहीं किया जाता है तो जनता/जमाकर्ता का विश्वास बैंक के प्रति खराब हो जावेगा। न्यायालय विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज किये गये कारणों से पूरी तरह सहमत है।

(8) विद्वान एकल न्यायाधीश का तर्क इस न्यायालय द्वारा जारी निर्णयों की श्रृंखला में प्रतिपादित कानून के सुस्थापित सिद्धांतों के अनुरूप है। न्यायालय को यह जानकर निराशा हुयी है कि उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने सबूतों की पुनः सराहना करके विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किये गये अच्छे तर्क को खारिज कर दिया।

(9) उच्च न्यायालय की खंड पीठ के द्वारा यह भी देखा गया कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय अनुशासनात्मक प्राधिकारी या जांच अधिकारी द्वारा विभागीय जांच में दर्ज किये गये निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। उच्च न्यायालय द्वारा यह भी देखा गया कि न्यायालय उन निष्कर्षों पर अपील नहीं कर सकता और अपीलीय प्राधिकारी की भूमिका नहीं निभा सकता।

(10) यह कहने के बाद उच्च न्यायालय ने पूरे साक्ष्य की आलोचना की और पुनः सराहना की और विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज किये गये अच्छे तर्क को खारिज कर दिया गया।

(11) अपीलकर्ता बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री नेहा शर्मा ने तर्क दिया कि प्रक्रियात्मक अनियमिततओं या अवैधता या जांच के तरीकों को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों के उल्लंघन का कोई आरोप बैंक पर नहीं है जिसके लिये उच्च न्यायालय की खंड पीठ की

आवश्यकता होगी और न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दर्ज किये गये अच्छे तर्क को रद्द किया। आगे अधिवक्ता अपीलार्थी बैंक ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने संपूर्ण साक्ष्य की दुबारा सराहना कर त्रुटि की है और उच्च न्यायालय जांच अधिकारी द्वारा पेश किये गये निष्कर्षों पर अपील नहीं कर सकता है और एक अपीलीय प्राधिकारी की भूमिका नहीं निभा सकता है।

अपने तर्को के समर्थन में विद्वान अधिवक्ता अपीलकर्ता बैंक ने उक्त न्यायालय के विभिन्न निर्णयों को पेश किया। यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम विश्व मोहन, [1998], 4 एस. सी. सी. 310, परिधान निर्यात संवर्धन परिषद बनाम ए. के. चोपड़ा, [1999], 1 एस. सी. सी. 759, भारत संघ बनाम के.जी. सोनी, [2006] 6 एस. सी. सी. 794, स्टर्लिंग कंप्यूटर लिमिटेड बनाम मेसर्स एम एंड एन पब्लिकेशंस लिमिटेड, [1993] 1 एस. सी. सी. 445, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और अन्य बनाम एस. के. शर्मा, 3 एस. सी. सी. 364, दिल्ली विकास प्राधिकरण बनाम यू. ई. ई. इलेक्ट्रिकल्स इंजीनियरिंग (पी) लिमिटेड, [2004] 11 एस. सी. सी. 213, अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक, यूनाइटेड कमर्शियल बैंक बनाम पी. सी. कक्कड़, [2003] 4 एस.सी.सी. 364।

(12) बहुलता से बचने के लिए हमारे द्वारा इस न्यायालय के कुछ

निर्णयों पर ध्यान दिया जा सकता है।

(13) बी. सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ, [1995], 6 एस. सी. सी. 749, में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने पैराग्राफ 12 में यह अभिनिर्धारित किया कि न्यायिक पुनरावलोकन किसी निर्णय के खिलाफ अपील नहीं है बल्कि निर्णय लेने की तरीके का पुनरावलोकन है। न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिये है कि एक व्यक्ति को उचित उपचार मिलें ना कि यह सुनिश्चित करने के लिये कि प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचा है, वह आवश्यक है। न्यायालय की राय में जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोप की जांच की जाती है तो न्यायालय/न्यायाधिकरण यह निर्धारित करने के लिये होता है कि क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गयी थी या क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किया गया है एवं क्या निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित होते है जिस प्राधिकारी को जांच की शक्ति दी जाती है, उसके पास किसी तथ्य या निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये अधिकार, क्षेत्र, शक्ति और अधिकार है लेकिन निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित होना चाहिये ना कि तकनीकी नियमों पर उसमें पारिभाषित सबूत तथ्य या सबूत अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते है। जब प्राधिकारी यह स्वीकार करता है कि साक्ष्य और निष्कर्ष को उससे समर्थन प्राप्त होता है तो, अनुशासनात्मक

प्राधिकारी यह मानने का हकदार है कि अपराधी अधिकारी आरोप का दोषी है।

न्यायालय/न्यायाधिकरण अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति के तहत साक्ष्यों की सराहना करने और साक्ष्यों पर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुंचने के लिये अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। न्यायालय/न्यायाधिकरण वहां हस्तक्षेप कर सकता है जहां प्राधिकारी द्वारा यह माना जाता है कि अपराधी अधिकारी के विरूद्घ कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के नियमों के विरूद्घ है या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों का उल्लंघन है या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी बिना किसी सबूत के निष्कर्ष पर पहुंचा है।

(14) क्षेत्रीय प्रबंधक, युपीएसआरटीसी बनाम होती लाल, [2003] [605] एस. सी. सी. के मामले में इस न्यायालय ने पृष्ठ संख्या 614 पर यह टिप्पणी की कि यदि आरोपित कर्मचारी विश्वास की स्थिति रखता है जहां ईमानदारी और सत्यनिष्ठा कामकाज की अंतर्निहित आवश्यकताएं है तो मामले में नरमी से निपटना उचित नहीं होगा तो ऐसे मामले में कदाचार से सख्ती से निपटना होगा। जहां व्यक्ति जनता के साथ व्यवहार करता है और पैसा या वित्तीय लेन देन में लगा हुआ है या प्रत्यर्थी क्षमता में कार्य करता है तो उच्चतम स्थिर की सत्यनिष्ठा और भरोसा, आवश्यक

और अपरिहार्य है। उक्त पृष्ठभूमि में उच्च न्यायालय की खंड पीठ के निष्कर्ष उचित प्रतीत नहीं होते है, इसे रद्द किया जाता है और बर्खास्तगी के आदेश को जारी रखने वाले विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को बहाल किया जाता है।

(15) कानून का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि न्यायिक पुनरावलोकन निर्णय के विरूद्ध नहीं है, यह निर्णय लेने की प्रक्रिया के विरूद्ध है। उक्त मामले में प्रक्रियात्मक अनियमिताओं/अवैधताओं का कोई आरोप नहीं है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का भी कोई आरोप नहीं है। प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने दुर्भावनापूर्ण आरोप को बनाये रखने की कोशिश की है और यह दावा करने की कोशिश की है कि प्रत्यर्थी ने 1996 में सिकंदराबाद शाखा के मुख्य प्रबंधक के खिलाफ मामला दर्ज किया था और प्रत्यर्थी के खिलाफ शुरू की गई जांच दुर्भावना का परिणाम है। प्रत्यर्थी के बेबुनियाद आरोपों को यह न्यायालय स्वीकार करने में असमर्थ है। दुर्भावना का आरोप प्रमाणित नहीं हुआ है। यह सुस्थापित विधि है कि दुर्भावना का आरोप अनुमानों और संभावनाओं पर आधारित नहीं हो सकता है। यह परिस्थितयों पर आधारित होना चाहिये।

अधिवक्ता ने इस आधार पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन पर जोर देने की भी कोशिश की है कि प्रत्यर्थी द्वारा आवश्यक दस्तावेज

उसे उपलब्ध नहीं कराये गये थे। प्रत्यर्थी द्वारा जिन दस्तावेजों की मांग की गयी, वे सभी बिल प्रत्यर्थी द्वारा स्वयं प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किये गये थे। इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी को किसी प्रकार का कोई नुकसान नहीं हुआ है।

(16) जैसा कि पूर्व से यह देखा जा चुका है कि प्रत्यर्थी पर बैंक ऑफ इंडिया अधिकारी-कर्मचारी विनियम, 1976 के विनियम 3(1) के उल्लंघन का आरोप है जिसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक अधिकारी-कर्मचारी हर समय यह सुनिश्चित करने के लिये सभी संभावित कदम उठायेगा और बैंक के हितों की रक्षा करने और अपने कर्त्तव्यों का पूरी निष्ठा, ईमानदारी, समर्पण और परिश्रम से निर्वहन करें और ऐसा कुछ नहीं करें जो एक बैंक अधिकारी के लिये अशोभनीय हो।

(17) इस आशय से उच्च न्यायालय की खंड पीठ का आक्षेपित आदेश कानून की दृष्टि में निष्प्रभावी है जिसे अपास्त किया जाता है। विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश को बहाल किया जाता है। प्रत्यर्थी द्वारा दायर रिट याचिका खारिज की जाती है। अपील स्वीकार की जाती है।

(18) सिविल अपील संख्या 2005 के 640, 2005 की सिविल अपील संख्या 298 में पारित आदेश को मध्य नजर रखते हुये, 2005 की सिविल

अपील संख्या 640 को खारिज किया जाता है।

याचिका खारिज की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मीनाक्षी मीना द्वितीय (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।